संपादकीय

समाज की विकास प्रक्रिया में मज़दूर एवं अन्य दुर्बल जनविभागों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। असल में इतिहास ऐसे जनविभागों के संघर्ष की कथा है। लेकिन हमारे उपलब्ध इतिहास ग्रंथों में ऐसे जनविभागों, श्रमिकों का नामोनिशान तक नहीं है। तथाकथित इतिहास में शासक एवं शोषक समाज व्यवस्था के नियंताओं का मात्र उल्लेख उपलब्ध है। यह झूठा इतिहास एक साज़िश है। दुर्बल जनविभागों व समाज के अन्य संघर्षशील जनविभागों को इतिहास से बाहर कर दिया गया है, जिससे ये हमेशा दलित व दुर्बल ही बने रहेंगे। इसकी ओर इशारा करते हुए कंवल भारती 'दलित विमर्श की भूमिका' में लिखते हैं कि "भारत के इतिहास को पढ़ते वक्त यही चित्र आपके सामने उभरता है कि भारत में एक संस्कृति रही है। राजे-महाराजे राजनीतिक तथा वंशगत वैर के आधार पर आपस में लडते रहे हैं। इस इतिहास में सिर्फ शासक जातियों के उत्थान-पतन, उनके धर्म संस्कार और उनके जीवन के सिवा अन्य जातियों वर्गों और समुदाय का जीवन दिखाई नहीं देता।" यानी इतिहास के असली स्वामी और उनकी संस्कृति को इतिहास में जगह नहीं मिला है, उसे नकारा दिया गया है।

दूसरी ओर इतिहास के बिना कोई भी समाज वर्तमान में अपने को प्रतिष्ठित नहीं कर पाता और भविष्य का सही आयोजन नहीं कर सकता। वास्तव में इतिहास ऊर्जा है, ज्ञान है, आगे की ओर अग्रसर होने की मशाल है। भविष्य निर्माण में इतिहास की भूमिका के बारे में राजेश्वर सक्सेना 'इतिहास, विचारधारा और साहित्य' में यों लिखते हैं - 'इतिहास से युग सापेक्ष संस्कृति की वस्तुपरकता को पहचाना जा सकता है। चूंकि इतिहास ही काल सापेक्ष संस्कृति की आँख है, जीवन चेतना का प्रत्यक्षदर्शी है और भविष्य की संभावनाओं का व्याख्याता और विश्लेषक है।" हमारा अतीत शोषण से भरा हुआ था। उसी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए शोषक वर्ग सदैव जाग्रत रहता है। वह समाज के बुनियादी परिवर्तन का विरोध करता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस सन्दर्भ में दलितों को वर्तमान, जो अतीत और भविष्य का सन्धिस्थल है, में खडे होकर शोषकों, अत्याचारियों और उनके तंत्रों से लडने के लिए ताकत एवं विवेक दोनों अर्जित करना चाहिए। इतिहास इन सबका मूलस्रोत है। इतिहासबोध के साथ शोषण भरे अतीत या अभिशप्त इतिहास की छानबीन करने पर शोषकों, शोषण तंत्रों एवं उसके औज़ारों का सही रूप नज़र आएगा। मतलब यह है कि उनकी आदत, कुटिलता, ताकत, मंतव्य, रीति-नीति आदि की झांकियाँ स्पष्ट हो जाएंगी। संघर्ष को सही रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए इन सबकी जानकारी अनिवार्य है, जो इतिहास ही प्रदान कर सकता है। इतिहासबोध के साथ देखने पर अनीति की शक्तियाँ और उसके प्रेरणास्रोत दिखाई देंगे।

मोहनदास नैमिशराय कृत 'भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास' (चार भाग) अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर कदम रखते दलित चिन्तन की ताकत और उद्देश्य को व्यक्त

करता ही है। आज दलित चिन्तन इतिहास ढोता नहीं, उनकी छानबीन कर रहा है। इस छानबीन के दौरान वह इस बात पर भी गौर करने लगा है कि आरक्षण, अनुदान आदि समुदाय के लिए बैसाखियों से बेहतर है? लंगडा ही अक्सर बैसाखियों का सहारा लेता है, अजीवन लंगडे को उससे मुक्ति भी नहीं मिलती है। यह सरकार की साज़िश नहीं? तेज़ रफ्तार में बढते समाज के साथ आगे बढने के लिए यह क्या काफी है? इससे भी दलित तबका अवगत है। राजनीति में दलितों की सक्रिय भागीदारी इसका प्रमाण है। इस तरह आज का दलित चिन्तन राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संवादों के केन्द्र में आ गया है, यह सर्वविदित ही है। वर्णव्यवस्था, जाति व्यवस्था, नियतिवाद इत्यादि ने समाज के एक बडे तबके की संघर्ष चेतना को कुंद कर दिया था। ज्योतिबा फुले, भीमराव अंबेडकर आदि के नेतृत्व में इसके विरुद्ध संघर्ष शुरू किया गया। वर्तमान रूप इसका परिणाम है।

सही इतिहास दृष्टि संघर्ष चेतना को विमर्शात्मक क्षमता प्रदान करती है। दलित आत्मकथायें, उपन्यास और अन्य साहित्यिक विधायें आज यही कार्य कर रही हैं। अब तक के शोषण, अत्याचार, उपेक्षा इत्यादि से मुक्त होकर एक स्वस्थ एवं शोषण मुक्त मानवता के स्वप्न को साकार करने के लिए दलितों को इतिहास का आलोक और भी अनिवार्य है। यह सृजनात्मकता को जीवंत बना देगा। इसी अंक के 'समाज विमर्श और दलित साहित्य' शीर्षक लेख में हरपालसिंह 'अरुष' इस ओर ही इशारा करते हैं। "दलितों द्वारा प्रणीत आत्मकथाओं ने हिन्दी में दलित साहित्य का पहचान परक सूत्रपात किया है। हमें यह जान लेना आवश्यक है कि आत्मकथा के लिए दलित लेखन को अपने ज़ख्मों को कुरेदकर पुराने दर्दों को उभारना होता है। ऐसा करते समय उसकी स्मृति पर विमर्शात्मक शक्ति का बल लगता है तब अनुभव मात्र उभरकर ही सामने नहीं आते बल्कि उन दर्दों के कारणों पर विचार किया जाता है। इन कारणों और इनके निवारण की आकांक्षा का द्वन्द्व विशेष रचनात्मकता को जन्म देता है।" यह दलित साहित्य के इतिहासबोध एवं उद्देश्य को स्पष्ट करता ही है।

पी. रवि
संपादक

अनुक्रम

संपादकीय		
समाज-विमर्श और दलित साहित्य	हरपाल सिंह 'अरुष'	7
दलित साहित्य में भावबोध-अनुभवों की प्रामाणिकता	डॉ. सुशीला टाकभौरे	12
दलित साहित्य की वैचारिकता	डॉ. आर. शशिधरन	17
दलित साहित्य की समकालीनता	डॉ. रामप्रकाश	24
दलित साहित्य का अतीत, वर्तमान और भविष्य	डॉ. नामदेव	34
कुछ कविताएँ	सुशीला टाकभौरे	39
हिन्दी दलित कविता में साधारणजन	डॉ. विजय कुमार 'संदेश'	42
दलित आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी दलित कविता	डॉ. जिषा एम.एन.	49
अपने इतिहास को ढोता दलित	के.वी. शशी	59
युगीन यथार्थ के आईने में दलित साहित्य का शुद्धतम स्वरूप : संदर्भ प्रेमचन्द	डॉ. राम आह्लाद चौधरी	67
दलित कहानी में प्रतिरोधी स्वर	डॉ. गीता कुञ्ञम्मा. सी	80
दलित स्त्री का प्रतिरोधी स्वर	अञ्जु के.ए.	87
वैश्वीकरण के दौर में वेश्याकरण की एक कहानी	डॉ. प्रमोद कोवप्रत	93
हिन्दी दलित आत्मकथाओं का वैशिष्ट्य	बिजय कुमार प्रसाद	96
हिन्दी के दलित नाटक : इतिहास और वर्तमान	डॉ. सर्वेश कुमार मौर्य	100
हिन्दी दलित नाटक : एक परख	संगीता	123
समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन	भीमसिंह	128